आधुनिक रंगमंच

आधुनिक रंगमंच कहते ही आधुनिक यथार्थवादी सामने आते हैं और आधुनिक यथार्थ हमारे युग के मनोरंजन क्षेत्र में व्यापक और महत् हो गया, इससे सभी परिचित है। विज्ञान युग की दो महत्वपूर्ण उपलब्धियों कैमरा और रेडियो ने हमारे यथार्थ की अपार झाँकियों में सत्य चित्र, स्वरूप तथा मानव समाज की यथार्थ बोली-प्रकृति के, जीव-जन्तु जगत के सत्य स्वर के साथ हमारे सम्मुख रख दी है।

मानव मनोरंजन जगत् में फिल्म (कैमरा) अपनी इस यथार्थवादी कला में निरंतर विकसित होती जा रही है। इस माध्यम से जीवन अपने समग्र रूप में, अपनी समूची प्रकृति के साथ, सभी वातावरण के बीच में अपने समस्त रंगों में उजागर हो रहा है। इसकी तुलना में 'आधुनिक रंगमंच' अपने नाट्य माध्यम से जीवन का जितना चित्र, जितना अंश और रूप, दर्शक पाठक के सामने रख पाता है, वह फिल्म के सामने कितना सीमित और नयून है। शायद इसीलिए इस यथार्थवादी रंगमंच से, इसकी सुगठित नाट्य परंपरा (वेलमेडप्ले) से पिरेन्देलो, बेख्त, टी.एस.इलियट आदि ने इस कदर विद्रोह किया और अपने रंगमंच को अधिक प्रशस्त, उदार तथा कात्यमय बनाने का प्रयत्न किया।

रंगमंच एक सहयोगी एवं संश्लिष्ट रचनात्मक प्रक्रिया से गुजर कर जीवन्त अभिव्यक्ति माध्यम के रूप में साकार और सार्थक होता है। अनेक ऐतिहासिक और जटिल कारणों से हमारा आधुनिक भारतीय और विशेषकर हिंदी रंगमंच कई प्रकार के अंतर्विरोधों से घिरा है। जहाँ तक परिमाण, विस्तार और लोकप्रियता अथवा व्यावसायिक सफलता का प्रश्न है, इसमें कोई संदेह नहीं है मराठी, बंगला और कन्नड़ जैसी समृद्ध भाषाओं के मुकाबले हिंदी का रंगकर्म अभी रंग उतना विकसित और समृद्ध नहीं है। परंतु सवाल यदि प्रयोगशीलता, कलात्मकता और अकुंठ ग्रहणशीलता का है तो समकालीन हिंदी रंगकर्म किसी से कम नहीं है।

Scanned by CamScanner

नये रंगमंच के उदय में सर्वप्रथम एक मात्र दिशा है 'नाटककार की अपनी रंगदृष्टि'। आधुनिक रंगमंच ने अपने क्षेत्र में विकसित रंगशिल्प से यह सिद्ध कर दिया है कि नाटक लिखना लेखक की अपनी एकान्त कला नहीं है, वरन् नाट्यलेखन, वस्तुत नाटककार से प्रस्तुतकर्ता, निर्देशक की प्रतिमा की मांग करता है। वह अभिनेता, रंगशिल्पी की कला सहज अपेक्षा करता है ताकि नाटक अपनी अभिनयात्मिक वृत्ति के साथ मंच पर रंगकला की सहज उपलब्धि को प्राप्त कर सके और उसमें निर्देशक तथा अभिनेता को भी नाटककार की ही भांति अपनी-अपनी सृजनात्मक शक्ति को अभिव्यक्त करने का अवसर और क्षेत्र मिल सके। नाटककार और प्रस्तुतकर्ता का ऐसा अभिन्न संबंध निश्चय ही नये रंगमंच की अपनी विशिष्टता है।

इस आधुनिक रंगमंच की अपनी शक्ति भी है, जो फिल्म, रेडियो तथा टेलीविजन से अपराजेय है। यह शक्ति है, इसके 'काव्यतत्व' में इसके मांसल रंगतत्व में, जिसे काकटेव ने 'रंगमंच का काव्य' कहा है। पर नाटक का यह काव्य केवल उसके कथोपकथनों में नहीं है, जैसे कि पश्चिम में 'शेक्सपियर' और हमारे यहाँ जयशंकर प्रसाद और टैगोर में विद्यमान है। वरन् यह काव्यात्मकता है नाटक में व्याप्त अभिनयात्मिकता वृत्ति में, पात्रों में हिंदी अभिनय कला में, जिसकी प्रत्यक्ष अनुभूति हमें नाटक के प्रस्तुतीकरण में होती है। अथवा नाटक पढ़ते समय मन के मंच पर यदि उसे अभिनीत होते हुए देख सके, तब उसमें व्याप्त रंगमंच का काव्यानन्द हम पा सकते हैं। जिस नाट्य कृति का मूलाधार यह अभिन्यात्मिकता वृत्तित्व होती, वही सफल श्रेष्ठ आधुनिक रंगमंच का उदाहरण है। शेष सब अर्थहीन है। यथार्थवादी रंगमंच के नाम पर केवल विस्तार देना, मंच पर वस्तु सामग्री, वस्तुएं गिनना, वास्तविक रंगमंच की अवज्ञा करना है क्योंकि कैमरा शक्ति के आगे कौन कितना और क्या 'डिटेल' दे सकता है। आधुनिक रंगमंच की शक्ति वहाँ से शुरू होती है, जहाँ कैमरा और रेडियो की शक्ति समाप्त हो जाती है। वह शक्ति क्षेत्र है यथार्थ और कल्पना के कलात्मक समन्वय में। इन दोनों तत्वों की समन्वित शक्ति से जो रंगमंच बनता है, उसमें कथा का निर्माण घटनाओं के चयन की अपेक्षा पात्रों के कार्य, उनके कर्म तथा उनकी चेतना के विकास, संघर्ष और अर्थबोध के आधार से होता है। चेतना का यही धरातल रंगमंच में काव्य का स्त्रोत बनता है। रंगमंच की यह उपलब्धि यथार्थवादी रंगमंच की सीमाओं पर निश्चय ही एक विजय की दृष्टि है।

निर्देशन और प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से देखे तो आधुनिक रंगमंच के उद्भव और विकास का दौर निसन्देह बेहद उत्साहवर्द्धक रहा है। उस आरंभिक चरण में हिंदी रंगमंच की नींव को मजबूत करने वाले छोटे-बड़े शहरों, कस्बों के बहुसंख्य अज्ञात

Scanned by CamScanner

अथवा अल्पज्ञात उत्साहीय रंगकर्मियों के अलावा अलकाजी, सत्यदेव दुबे, हबीब तनवीर, शान्ता गांधी, श्यामानन्द जालान, ब.व.कारंत, ओमशिवपुरी, ब्रजमोहन शाह, शीला भाटिया आदि का निर्णायक योगदान रहा है। इसके बाद देश भर में अपने स्तरीय रंगकर्म एवं बहुसंख्य रंग-प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से नई रंग चेतना लाने वालों में एम.के. रैना, रंजीत कपूर, अमाल अल्लाना, भानु भारती, निरीश रस्तोगी, कुमुद नागर, विमल लाठ, कृष्णकुमार जैसे अनेक युवा एवं उत्साही रंगकर्मियों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। पिछले काफी समय से हमारे ज्यादातर वरिष्ठ निर्देशक जहाँ के तहाँ खड़े प्रतीत होते हैं। अलकाजी 'तुगलक' में अपने चरम पर थे। और उसी के साथ उन्होंने थिएटर छोड़ दिया। दुबे के 'अरण्य', 'बलि' ने भी विकास के कोई संकेत नहीं दिए। हबीब तनवीर के 'हिरमा की अमर कहानी' ने निराश किया। श्यामानन्द जालान 'शकुन्तला' या 'आधे-अधूरे' में कहीं भरे-पूरे नही लगते।

दुर्भाग्य से भारतीय आधुनिक रंगमंच में अभी गत दो ढाई दशकों से पूर्ण प्रायः जितनी नाट्यकृतियाँ लिखी गयीं, उनमें इसी कल्पना तत्व, दर्शन तत्व और मुख्यतः अभिनयात्मिका वृत्ति का अभाव था। उन पर इस्सन, चेखव और शा के उन यथार्थवादी नाटकों की छाप थी। वे भारतीय नाट्यकृतियाँ न भारतीय पाठकों को ही रूचिकर लगीं, न अभिनेताओं और दर्शकों को ही आकृष्ट कर सकी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समूचे भारतवर्ष में सभी क्षेत्रीय रंगमंच के स्तर से नाट्यलेखन में तीव्र गति आयी और चारों ओर रंगमंच की मांग के कारण आधुनिक रंगमंच के विषय में चर्चा और चिंता शुरू हुई और पश्चिम के आधुनिक रंगमंच पर जब हम आये दिन इतने प्रयोग और इतनी क्रांतियाँ देखते हैं तो हमारी चिन्ता यह अनुभव कर और भी अधिक गहन हो जाती है कि आधुनिक रंगमंच का अपना कोई निश्चित कला माध्यम ही नही है।

आधुनिक रंगमंच का पूरा रंगशिल्प हमें पश्चिम में मिला है। नाटक का सीधा संबंध हमें अपने समाज और जीवन से जोड़ना होगा। जन-समुदाय को अपने रंगमंच से जोड़ने के लिए नाटककार को स्वभावतः उन्हीं के रागरंग में उतरना होगा। इस दिशा में अतुल शक्ति बिखरी पड़ी है, लोक रंगमंच की, जिसकी परंपरा सदैव अबाध और सुदृढ़ है। रंगकला का यही प्रतिमान आधुनिक रंगमंच की विशेषता है। जहाँ नाट्य लेखन एक कला है, ठीक उसी प्रकार प्रस्तुतीकरण को भी कला की भूमिका और संज्ञा प्राप्त हुई है फिर भी ये दोनों कलाएँ एक दूसरे से अभिन्न है, एक दूसरे से उद्‌भूत है। भारतवर्ष में आधुनिक रंगमंच के अंतर्गत वर्तमान काल का यह रंग-आंदोलन नाटककार का रंगमंच में आना, उससे अपने आप को अंगीकृत करना-पुनर्संगठन का यह पहला चरण निश्चय ही इसके महान् भविष्य का साक्षी है,

जहाँ पहली बार सुसंगठित और नियोजित ढंग से, रंगकला के प्रति अटूट निष्ठा लिए हुए नाटककार अपने रंगमंच के साथ एकाकार हुआ।

स्वतंत्रता से पूर्व, लगभग 1936-1938 के आसपास जहाँ एक ओर पारसी हिंदी रंगमंच अपनी चरम परिणति पर पहुंचकर सनीमा के आगमन अथवा सिनेमा के अंक में समा जाता है, दूसरी ओर जहाँ हिंदी का शौकिया रंगमंच भी केवल एकांकी नाट्य प्रदर्शन वह भी केवल कॉलेज विश्वविद्यालयों के रंगमंच तक सीमित हो जाता है और तीसरी ओर जहाँ इस काल के प्रायः सभी नाटककार अपनी प्रतिभा को केवल नाट्य लेखन तक ही सीमित कर लेते हैं। व्यवहारिक हिंदी रंगमंच में यह शून्यता तब से आजादी तक खिंची रही है। काफी लम्बा काल है पर ऐतिहासिक दृष्टि से उस शून्यता को तोड़ने और इसे रंगरंजित करने की दिशा में-प्रत्यक्ष न सही, तो परोक्ष ही ढंग से दो रंगमंच दलों ने, रंगमंच शक्तियों ने, उल्लेखनीय कार्य किया है–

- पृथ्वी थिएटर
- इप्टा-इंडियन पीपुल थिएटर
- राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय

'पृथ्वी थिएटर' शुद्ध व्यावसायिक रंगमंच था। पारसी थिएटर से अलग हटकर हिंदी सिनेमा की होड़ में इसने रंगकला, समाज, श्रेष्ठ आदर्श, श्रेष्ठ अभिनय इन सबको अतिनाटकीय नाटकों से लेकर एक नया अध्याय शुरू किया। पठान, दीवार, आहुति, कलाकार आदि नाटकों से पृथ्वी थिएटर ने उस शून्य को, व्यवधान को, अपने ढंग से भरना चाहा, और दर्शकों को शुद्ध रंगस्तर से अभिभूत किया।

'इप्टा' का चरित्र मूलतः राजनीतिक था परंतु इसने राजनीतिक मर्यादाओं के होते हुए भी रंगमंचच की बहुत सेवा की। इसने अपने रंगमंच से खोजकर प्रस्तुत कर दिखाया कि नया रंगमंच लोक रंगमंच से कितने तत्व ले सकता है। वस्तुतः रंगमंच जब सही अर्थों में मानव से जुड़ने लगता है, तभी उसका व्यक्तित्व निखरता है। दर्शक वर्ग तक अपनी बात पहुंचाने के लिए भावनामय संवाद, बौद्धिक तार्किक कथोपकथन, बड़ी-बड़ी घटनाओं, मंच दृश्यों की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि मानव के सुख-दुख, गायन, वादन, नर्तन, हंसी, व्यंग्य, प्रहसन, नकल आदि के द्वारा भी कही जा सकती है।

ये दोनों थिएटर अपनी-अपनी तरह से रंगमंच की सेवा कर रहे थे, देश के स्वतंत्र होने के पश्चात् जो नयी सांस्कृति चेतना जगी उसमें रंगमंच विषयक सत्य परम उल्लेनीय है। स्वतंत्रता के बाद हमारे देश का अंतर्राष्ट्रीय संबंध संसार के अन्य राष्ट्रों के संपर्क में, जो आर्थिक, औधोगिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों में हमसे बहुत-बहुत आगे थे।

Scanned by CamScanner

सन् 1959 में नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा की स्थापना हुई जिसमें तीन वर्ष की नाटक संबंधी शिक्षा प्रदान की जाती है। इसके निर्देशक पहले 'इब्राहिम अलकाजी' जी थे और अब है। इसमें पौर्वात्य और पाश्चात्य नाटकों के अध्ययन के साथ-साथ एक्टिंग, सिनिक डिजाइन, कास्ट्यूम्ज डिजाइन, लाइटिंग, मेकअप, थिएटर आर्किटेक्चर का अध्ययन कराया जाता है। अन्तिम वर्ष में एक्टिंग, स्टेज क्राफ्ट और स्कूल ड्रामेटिक्स का अध्ययन किया जाता है, इसके ओपेरा थिएटर भी है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत यहाँ जो नयी सांस्कृतिकता जगी, वह परम उल्लेनीय है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार की ओर से प्रायः नाट्य महोत्सव होने लगे। मुख्यतः हिंदी क्षेत्र में और उसके प्रतिनिधि नगरों जैसे—दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, पटना, जबलपुर, इलाहाबाद आदि से बीसियों नाट्य संस्थाएँ बनी सांस्कृतिक समारोहों तथा उद्घाटन के अवसरों से लेकर मंत्रियों तथा अफसरों के स्वागत उपलक्ष्य में और गांव में विकास केन्द्र के जलसों तक नाट्य प्रदर्शन की व्यापकता हमें देखने को मिलने लगी।

आज हमारे पास 'हिंदी रंगमंच' जिसके पिछले वर्षों की नियमित साधना है। इस हिंदी रंगमंच को राष्ट्रीय रंगमंच भी कहते हैं। राष्ट्रीय रंगमंच से तात्पर्य है कि आज हमारे नाटक और रंगमंचीय क्रियाकलाप में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ विकसित हुई हैं औरर ऐसे रूपों और शैलियों का विकास हो रहा है जिनमें एक विशिष्टता है तथा जिनका स्वरूप देशव्यापी है। आज भारतीय रंगमंच का क्रिया-कलाप विभिन्न भाषाओं में होकर भी एक समग्रता लिए हुए है। क्षेत्रीय और भाषागत परंपराओं और विशिष्टताओं को रखते हुए भी आज का भारतीय रंगमंच भाषागत सीमाओं से नहीं बंधा है। उसके राष्ट्रीय आयाम है और उसकी प्रवृत्तियाँ एवं मूल्य भी राष्ट्रीय है।

पिछले लगभग बीस-पच्चीस वर्षों के बहुत थोड़े से समय में ही हमारे आधुनिक भारतीय रंगमंच ने उत्साह वर्द्धक विकास किया है। हमारी उपलब्धियाँ कम महत्वपूर्ण नहीं रही हैं। रंगमंच पर चारों ओर से घिरत आते इन घने काले अंधेरे के बावजूद जटिल अनुभव के इस जीवन्त एवं सर्वाधिक सशक्त अभिव्यक्ति माध्यम के भविष्य को लेकर निराश होने की कतई कोई जरूरत नहीं है।

विज्ञान, उद्योग और तकनीक की दृष्टि से विश्व के सर्वाधिक विकसित देशों का इतिहास इस बात का गवाह है कि सब प्रकार के चौतरफा आक्रमणों के चलते भी इस गहन गम्भीर त्रिआयामी कला माध्यम की लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा समय के साथ घटने के बजाए बढ़ी ही है। म.प्र. रंगमंडल (भोपाल) राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय रंगमंडल (दिल्ली) और दिल्ली की नाट्य संस्था 'संभव' को यदि हम उदाहरण के तौर पर देख ले तो बेझिक यह नतीजा निकाला जा सकता है कि संस्थान चाहे सरकारी

हो, चाहे गैर सरकारी, यदि आपमें इच्छा, इरादा और साहस लगन है तो कुछ भी असंभव नहीं है।

अनेक नाटककार इसी परंपरा में आते जा रहे हैं व उनकी कृतियों को राष्ट्रीय नाट्यचक्र के अंतर्गत सम्मान मिल रहा है। आज नाटक को पूर्ण साहित्यिक गरिमा प्राप्त है व नाटक मात्र मनोरंजन न रहकर गहरे जीवन बोध व जीवन से सीधे साक्षात्कार का माध्यम बन गया है। नये रंगमंच आंदोलन की इस व्यापक लहर का प्रभाव हमारे रंगमंचीय क्रियाकलाप के और दूसरे पक्षों पर भी पड़ रहा है। प्रदर्शन, निर्देशन, अभिनय, रूप-सज्जा, वेशभूषा व प्रकाश योजना में भी पिछले एक दशक से अधिक कल्पनात्मक व कलात्मक काम हुआ है। अब प्रशिक्षित युवा कलाकारों की पूरी पीढ़ी तैयार हो गई है जो रंगमंच का कार्य अधिक निष्ठा और अनुशासन के साथ कर रही है।

इस दशक में विभिन्न भाषा क्षेत्रों के बीच विनिमय के ऐसे संबंध स्थापित हुए कि धीरे-धीरे अनिवार्यता बन गये। आज स्थिति यह है कि एक भाषा के कई नाटक अन्य भाषाओं में अनूदित व प्रदर्शित हो रहे हैं और आज कितने ही नाटकों को राष्ट्रीय नाट्य चक्र में सम्मिलित किया जा सकता है जैसे—मोहन राकेश कृत 'आषाढ़ का एक दिन', 'आधे-अधूरे' आदि।

अतः कह सकते हैं कि पिछले पाँच-सात वर्षों में भारतीय और विशेषकर हिंदी रंगमंच पर कोई अपूर्व अथवा कालजयी महान् प्रस्तुति शायद नहीं हुई है। इन दिनों स्त्री-पुरुष संबंधों के यथार्थवादी नाटकों और व्यवस्था विरोध के रंगद्वारी अथवा मंचयुक्त नाटकों के साथ-साथ कई प्रकार के प्रयोगधर्मी नाटक भी खूब लिखे और खेले जा रहे हैं। अपनी गति संगीतमय समृद्ध लोकरंग परंपरा से जुड़कर नए रास्ते निकालने की अर्थपूर्ण कोशिशें भी देशभर में अलग-अलग रूप रंग और स्तर पर हो रही है। अभिनय प्रधान मनोशारीरिक रंग शैली और निर्देशन प्रधान तकनीक समृद्ध रंग पद्धति के प्रदर्शन भी एक साथ दिखाई पड़ रहे है। हल्के-फुल्के हास्य, व्यंग्य प्रधान, मनोरंजक अथवा रहस्य रोमांच के प्रस्तुतीकरण भी लोकप्रिय हुए हैं और विदेशी खासकर ब्रेख्त और शेक्सपियर के नाटकों के अनुवादों की भरमार हमेशा की तरह अब भी जारी है।

Scanned by CamScanner